
प्रवचन-1 वचनामृत-13 से 20

वचनामृत, 13 वाँ बोल। 12 वाँ बोल चला है। 'मैं ज्ञायक और यह पर',..... मैं एक जाननेवाला ज्ञायक और बाकी सारी चीजें-राग से लेकर सारी दुनिया, वह सब पर। बाकी सब जानने के प्रकार हैं। आदरणीय तो यह ज्ञायकस्वरूप भगवान त्रिकाली ज्ञान-आनन्दस्वरूप ध्रुव है, वह एक ही आदरणीय और स्वीकार करनेयोग्य है। आहा...हा...हा... ! है? बाकी सब जानने के प्रकार हैं।

'मैं ज्ञायक हूँ, बाकी सब पर'-ऐसी एक धारा प्रवाहित हो तो.... आहा...हा... ! मैं तो एक जाननेवाला.... जाननेवाला... जाननेवाला... (हूँ)। इसके अलावा दूसरी सभी चीजें मेरी नहीं। इस एक धारा से (अर्थात्) एक ही प्रकार से अन्तर्मुख होकर चले, तो

उसमें सब आ जाता है,... एक ज्ञायक को जानने से 'एगं जाणी सव्वं जाणी।' जिसने एक को जाना, उसने सब को जाना। सूक्ष्म बात है, भाई !

एक ज्ञायक ध्रुव, हों.... ! पर्याय भी नहीं। जाननेवाली पर्याय / अवस्था (है) परन्तु जानने में आने योग्य ज्ञायक, वह मैं हूँ। बाकी सब जानने के अनेक पहलू (प्रकार) आते हैं। आदरणीय तो एक ज्ञायक हूँ। आहा...हा... !

परन्तु स्वयं गहरा उतरता ही नहीं,.... आहा...हा... ! ऊपर ही ऊपर रहता है, अन्दर में जाने का प्रयत्न ही नहीं करता। बाहरी क्रियाकाण्ड और बाहरी विकल्पों की वृत्ति में फँसा, (इसलिए) अन्तर में उतरने का प्रयत्न करता नहीं। आहा... ! है? परन्तु स्वयं गहरा.... गहरा अर्थात्? ऊपर जो पर्याय है और ऊपर जो राग है, इससे गहरा (अर्थात्) जिसका पूरा तल चेतन है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर भगवान है, उसके अन्तर में तो जाता नहीं। क्योंकि? उतरता ही नहीं, करने की ठानता ही नहीं,.... आहा...हा... ! मैं एक जाननेवाला हूँ, ऐसा करने की ठानता ही नहीं; इसलिए कठिन लगता है। कठिन लगता है न? कि यह सब क्या है? चार नय और चार नय का व्यवहार—भेद और उसका निषेध और आत्मा एक ज्ञायक विद्यमान अर्थ—ये सब कठिन क्यों लगता है? क्योंकि अन्दर गहराई में उतरता नहीं है। आहा...हा... ! ऊपर—ऊपर से सब विकल्पों की वृत्तियाँ (चलती है)। सुनना, पढ़ना, विचार करना, कहना—इन सब वृत्तियों में अटकते हुए गहराई में उतरता ही नहीं। आ...हा...हा... ! क्योंकि करने की ठानता ही नहीं, इसलिए कठिन लगता है। आ...हा...हा... ! इसलिए कठिन लगता है। करने की ठानता ही नहीं, इसलिए कठिन लगता है। करने की ठान ले तो कठिन न लगे — ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! सूक्ष्म बात है।

अनुभव में से शब्द निकल गए हैं। बहिनें—लड़कियों के बीच रात्रि में बोल गये हैं, उसमें से लिख लिया गया, सो यह बाहर आया है। अन्तर आनन्द के अनुभव की भूमिका में से वाणी निकली है। एक देह स्त्री का है। बाकी अन्दर में तो स्त्रीपना, राग और विकल्प भी मेरा नहीं, वे तो अनुभव में—आनन्द में रहते हैं। वही मैं हूँ और कुछ भी मेरा नहीं। आहा...हा... ! 13 (हुआ)।

‘मैं हूँ’ इस प्रकार स्वयं से अपने अस्तित्व का जोर आता है, स्वयं अपने को पहिचानता है। पहले ऊपर-ऊपर से अस्तित्व का जोर आता है, फिर अस्तित्व का गहराई से जोर आता है; वह विकल्परूप होता है परन्तु भावना जोरदार होने से सहजरूप से जोर आता है। भावना की उग्रता हो तो सच्चा आने का अवकाश है ॥14 ॥

(अब) 14। ‘मैं हूँ’ इस प्रकार स्वयं से अपने अस्तित्व का जोर आता है,.... क्या कहते हैं? ‘मैं हूँ’ ऐसा अपने से (जोर आवे), विकल्प से नहीं। स्वयं से अपने को ‘है’ –(ऐसा) अस्तित्व का जोर आये। आहा...हा...हा...! मैं एक आनन्दकन्द प्रभु हूँ। सच्चिदानन्द आत्मा हूँ – ऐसा स्वयं को स्वयं अपने पुरुषार्थपूर्वक जोर आये।

स्वयं अपने को पहिचानता है। ऐसा जोर आये तो अपने को पहिचाने। आहा...हा...! है? पहले ऊपर-ऊपर से अस्तित्व का जोर आता है,.... अर्थात् क्या? कि पहले अनुभव नहीं करता। प्रथम अन्दर जाननेवाली चीज़ ‘है’, जाननेवाला है, वह अनादि-अनन्त नित्य ध्रुव है-ऐसा पहले ऊपर-ऊपर से अर्थात् विकल्प से जोर आता है। फिर अस्तित्व का गहराई से जोर आता है;.... आहा...हा...! ‘है’ भगवान पूर्णानन्द प्रभु! ऐसा यदि गहराई में से अस्तित्व का जोर आये; सत्ता ‘है’ यह ‘है’। दूसरी सब सत्ताओं का तो मैं जाननेवाला हूँ-यह भी व्यवहार। (क्योंकि) मेरी पर्याय में ज्ञात होता है। (और) उस पर्याय का मैं जाननेवाला हूँ और पर्याय को जाननेवाला (कहने पर) भी द्रव्य को जाननेवाला मैं हूँ। पर को तो मैं जानता ही नहीं। मेरी पर्याय में पर का जानना होता है, वह मेरी स्वयं अपनी पर्याय के सामर्थ्य से ज्ञात होता है, वह जानने में नहीं आता। आहा...हा...हा...! इतना कठिन अब...! स्वयं ऊपर-ऊपर से करता है।

अस्तित्व का गहराई से जोर आता है; वह विकल्परूप होता है... ‘विकल्परूप होता है’ –उसमें क्या कहा? अन्दर गहराई में ज्ञायक है... ज्ञायक है... ज्ञायक है... पर्याय के पीछे ज्ञायक है, विकल्प से पार है-ऐसा एक विकल्पपूर्वक जोर आता है। भले ही पहले विकल्प आये-राग का अंश पहले आये।

वह विकल्परूप होता है परन्तु भावना जोरदार होने से.... (अर्थात्) अन्दर

जाने की भावना यदि जोरदार हो तो सहजरूप से जोर आता है। सूक्ष्म बात है। केवल अनुभव की (बात) है। प्रथम अस्तित्व 'है' (ऐसा) ऊपर से (अर्थात् कि) विकल्प से लक्ष्य में आता है कि यह कोई चीज़ अन्दर में है; फिर विकल्प टूटकर भीतर की ओर जोर जाता है, तब भावना की उग्रता हो तो... (अर्थात्) आत्मा के चैतन्यस्वभाव की भावना अर्थात् एकाग्रता यदि हो तो, सच्चा आने का अवकाश है। सच्चा आने का अर्थात् सत्य आने का वहाँ अवकाश है। उसको आत्मा अनुभव में आ सके (ऐसा) वहाँ अवकाश है। आहा...हा...हा...! ऐसी बातें हैं।

केवल सादी भाषा! लड़कियों के बीच बोले, सो लिख लिया गया और बाहर आया है। समझने के लिए बहुत धीरज चाहिए।

जिसको अपना (हित) करना है, उसको पहले तो ऊपर से यह महाप्रभु कोई है, लोकालोक को जाननेवाला सर्वज्ञशक्तिधारी तत्त्व है (ऐसा लगता है)। (जैसे) सर्वज्ञ परमगुरु (हैं), वैसा सर्वज्ञ (मैं हूँ)। मैं ही सर्वज्ञ परमगुरु (हूँ)। सब से उच्च से उच्चतम मैं—ऐसा जोर यदि अन्दर से आये, आहा...हा...हा...! तो सच्चा आने का अवकाश है। तो अन्तर आनन्द के अनुभव में आने का उसको अवकाश है। भाषा तो सादी है परन्तु भाव थोड़े गहरे हैं। गहरे भाव (हैं)। आहा...हा...! ये 14 बोल हुए।

तीर्थकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है, उसे भी कैसी उपमा दी है! अमृतवाणी की मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गयी और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हू में पिल गया! ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी है; फिर जिनेन्द्रदेव के चैतन्य की महिमा का तो क्या कहना!॥15॥

(अब) पन्द्रहवाँ—तीर्थकरदेव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है.... ध्वनि है—आवाज़, ॐ ध्वनि, (वह) जड़ है। यह आवाज़ निकलती है, (वह) जड़ है। वैसे वीतराग की ॐ—आवाज़ निकले, वह जड़ है। उसे भी कैसी उपमा दी है। उस वाणी को (कैसी उपमा दी है।) अमृतवाणी की मिठास देखकर.... उन वीतराग की वाणी की मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गयी... (ऐसी) उपमा दी है।

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ तीर्थकरदेव की ध्वनि—वीतराग की वाणी छूटी और (जिसने) सुनी, वे कहते हैं कि वाणी में इतना अमृत का जोर आया। आहा...हा...हा...! कि द्राक्ष है, वह वनवास में चली गयी। उसकी मिठास के आगे इसकी मिठास चली गयी। आहा...हा...! अभी तो वाणी की बात है, हों! आत्मा की (बात तो) बाद में है।

अमृतवाणी की मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गयी और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हू में पिल गया। कोल्हू में पिल गया। (ऐसा कहते हैं)। भगवान की वाणी का अमृत! आहा...हा...! जहाँ भीतर में घूँट... घूँट कर वाणी आवे, उसके कारण तो कहते हैं कि इक्षु भी कोल्हू में पिल गया। (उसको ऐसा लगा कि) हमारा रस इसे नहीं लागू पड़े, ऐसी वीतराग की वाणी का रस है। आहा...हा...!

ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी है;... यह तो वाणी की महिमा गायी, आहा...हा...! ऐसी तो जिनेन्द्रवाणी की महिमा गायी। (फिर जिनेन्द्रदेव के) चैतन्य के महिमा का तो क्या कहना। आहा...हा...! वाणी से पार, विकल्प से पार, अन्दर चीज़ (पड़ी है)। पाताल में अनन्त (ज्ञान का) सागर और अनन्त आनन्द का समुद्र भरा है। उस चैतन्य की तो क्या बात करना! जहाँ तीर्थकर की वाणी को भी इतनी उपमा दी जाती है तो उनके चैतन्य के स्वभाव का तो क्या कहना! (ऐसा) कहते हैं। वहाँ तो अन्दर में अमृत का सागर भरा है।

आहा...हा...! भाषा सादी है परन्तु तत्त्व बहुत ऊँचा है! वीतराग की वाणी जब ऐसी हो तो फिर जिनेन्द्रदेव के चैतन्य के महिमा की तो क्या बात करना! जिनकी वाणी ऐसी तो उनका आत्मा कैसा होगा अन्दर में?! सर्वज्ञस्वभावी यों प्रगट हो गया! चैतन्य ज्योति... झलहल ज्योति... झलहल ज्योति... सर्वज्ञ (प्रभु) उनके आत्मा की तो क्या बात करना! भाषा तो सादी है परन्तु भाव थोड़े गहरे हैं। आहा...हा...!

ज्ञान—वैराग्यरूपी पानी अन्तर में सींचने से अमृत मिलेगा, तेरे सुख का फव्वारा छूटेगा; राग सींचने से दुःख मिलेगा। इसलिए ज्ञान—वैराग्यरूपी जल का सिंचन करके मुक्तिसुखरूपी अमृत प्राप्त कर ॥16 ॥

(अब) सोलहवाँ (बोल)। ज्ञान—वैराग्यरूपी पानी अन्तर में सींचने से अमृत

मिलेगा,... भगवान आत्मा का ज्ञान और पुण्य-पापभाव का वैराग्य। क्या कहा यह? कि शुभ-अशुभभाव में रक्त है, इससे विरक्त (होना), वह वैराग्य (है)। वैराग्य अर्थात् स्त्री-बच्चों को छोड़कर, दुकान छोड़कर बैठा, इसलिए वैराग्य है, ऐसा वैराग्य नहीं। अन्दर शुभ और अशुभभाव हुए, उसमें जो रक्त है, उससे विरक्त होना, उसका नाम वैराग्य (है)। और आत्मा के अन्तर में सन्मुख जाना, उसका (नाम) ज्ञान। ज्ञान और वैराग्य-उसका पानी अन्तर में सींचने से... आहा...हा...! सम्यग्ज्ञान और वैराग्य को अन्दर सींचने से अमृत मिलेगा। भगवान अमृत का सागर है। आहा...हा...!

‘श्रीमद्’ एक बार लिखते हैं (कि) दुनिया ने बाहर में नारियली देखकर प्रशंसा की परन्तु यहाँ तो अन्दर में पूरी अमृत की नारियली है। आहा...हा...! अन्दर अमृत का सागर भगवान डोलता है। उसकी ओर तो नज़र भी नहीं की, उसकी ओर तो देखा तक नहीं। इसकी बात को सुनते हुए रस और प्रेम अन्तर से उगा हुआ नहीं। आ...हा...हा...! (जिसको) उगे, उसको अमृत आता है, उसे अमृत मिलता है। आहा...हा...!

ज्ञान और वैराग्यरूपी पानी का अन्दर में सिंचन (अर्थात्) स्वरूप का ज्ञान और पुण्य-पाप का वैराग्य अर्थात् पुण्य-पाप के भाव से विरक्त (पना)। ये दोनों का यदि अन्दर में सिंचन किया जाए तो अमृतस्वरूप भगवान के आनन्द का अनुभव आये बिना रहे नहीं। आहा...हा...! शब्द तो सरल हैं।

अमृत मिलेगा अमृत! (ऐसा कहा) अमृत अर्थात्? वह अमृत कभी मरे नहीं, अमृत किसी को मारे नहीं, अमृत किसी से मरे नहीं। क्या कहा यह? अ...मृत है न? अन्दर अमृतस्वरूप भगवान (है), उसमें सच्चे ज्ञान और वैराग्य का यदि सिंचन करे तो वह चीज़, (वह) अमृत ऐसा है कि (वह) किसी भी चीज़ से मरे नहीं, उसका अस्तित्व मिटे नहीं; उसका अस्तित्व किसी को मारे नहीं। आहा...हा...! और उसके अस्तित्व को दूसरा कोई मार सके नहीं और उसका अस्तित्व किसी को मार सके नहीं। दूसरे का अस्तित्व उसको मार सके नहीं और अमृत का अस्तित्व दूसरे को मार सके नहीं। आ...हा...हा...! इसलिए उसे अ...मृत कहते हैं, आहा...हा...! इतनी शीतल वाणी है। शीतल (शीतल करे वैसी) वाणी!

ज्ञान—वैराग्यरूपी पानी अन्तर में सींचने से अमृत मिलेगा, तेरे सुख का फव्वारा छूटेगा;... आहा...हा...! फव्वारा जैसे छूटता है; वैसे यदि अन्दर आनन्दसागर में जाये (अर्थात् कि) लक्ष्य करे और ज्ञान और वैराग्य का सिंचन करे तो आनन्द का फव्वारा फूटे। अतीन्द्रिय आनन्द का फव्वारा पर्याय में फूटे—फटे, (अर्थात् कि) पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आ जाये। उस ध्रुव में अमृत पड़ा है। जिस ध्रुव में अमृत पड़ा है, उसमें यदि ज्ञान—वैराग्य का सिंचन किया जाये तो उसकी पर्याय में अमृतपना आये। अमृत का स्वाद आने से कभी मरे नहीं और कभी (किसी को) मारे नहीं, ऐसी उसकी दशा प्रगट हो जाती है। आहा...हा...! भाषा तो बहुत संक्षेप में है परन्तु (भाव बहुत गहरे है)। तुम्हारी माँग है न यह? झवेरचन्दभाई!

सुख का फव्वारा फूटेगा। आहा...हा...हा...! अन्दर में आनन्द का सागर है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और अन्तर से जिसके तल हाथ लगे, उसकी पर्याय में सुख का फव्वारा फूटता है और अन्तर में आनन्द आता है, तब जानना चाहिए कि उसने आत्मा को जाना, तब जाना कि इसने आत्मा का अनुभव किया। इस अनुभव में आत्मा जब आनन्दमय ज्ञात हो, तब आत्मा को जाना—ऐसा कहलाये। आहा...हा...! है?

राग सींचने से दुःख मिलेगा। राग में चाहे जैसा शुभराग हो या अशुभराग हो, भगवान के प्रति राग (होगा तो) भी दुःख मिलेगा। आहा...हा...हा...! 'मोक्षपाहुड़' की १६ वीं गाथा में कहा है 'परदव्वाओ दुग्गई।' तेरा लक्ष्य स्वद्रव्य को छोड़कर यदि परद्रव्य पर जाएगा, भगवान तो ऐसा कहते हैं कि यदि हमारे प्रति भी तुम्हारा लक्ष्य जाएगा तो चैतन्य की गति न होकर राग की दुर्गति होगी। आ...हा...हा...!

क्या कहा उसमें? 'परदव्वाओ दुग्गई'—ऐसा पाठ है। 'सदव्वाओ सुग्गई।' परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव ऐसा फरमाते (हैं) कि, हम तेरे से परद्रव्य हैं। हमारे पर तेरा लक्ष्य यदि गया तो तुझे राग होगा और राग होगा तो वह चैतन्य की गति नहीं, परन्तु चैतन्य की दुर्गति है। भगवानजीभाई! आहा...हा...! ऐसी बात है! 'परदव्वाओ दुग्गई'—तेरे से हम परद्रव्य हैं। तेरे द्रव्य में (रहेगा तो) 'सदव्वाओ सुग्गई' अन्दर में स्वद्रव्य में एकाग्रता का सिंचन कर तो तुझे आनन्द की सुगति प्रगट होगी, वह सुगति (है)। देव(गति) है, वह

सुगति नहीं। सेठाई या अरबोंपति मनुष्य हो या राजा (हो या) बड़ा देव हो—वह सुगति नहीं, वह तो दुर्गति है। वह दुर्गति है! आहा...हा...!

सुगति तो आत्मा के आनन्द में रागरहित होकर चैतन्य की परिणति प्रगट हो, उसे यहाँ सुगति कहा जाता है, और परद्रव्य पर लक्ष्य जाये, राग हो, उसे दुर्गति कहते हैं। आहा...हा...! है? ऐसी बात है। 'सदव्वाओ सुगई' अमृत का सागर भगवान (आत्मा), उसकी दृष्टि, एकाग्रता और ज्ञान करे तो तेरी सुगति—चैतन्यपरिणति प्रगट हो। परन्तु तेरे चेतन को भूलकर, परद्रव्य का लक्ष्य करेगा तो राग होगा। वह चैतन्य की गति से विपरीत गति है। उसकी (आत्मा की) दुर्गति है। आहा...हा...हा...! अरे...! भगवान के प्रति भक्ति का राग भी वास्तव में दुर्गति है। (राग) आता है। जब तक (पूर्ण) वीतराग नहीं हुए, तब तक सम्यग्दृष्टि को भी वीतराग की भक्ति का भाव, स्मरण (और) पूजा का भाव आता है, परन्तु वह राग है, वह चैतन्य की गति नहीं, चैतन्य की जाति नहीं। आहा...हा...! अमृत के नाथ से उसकी जाति भिन्न है। (इसलिए यहाँ कहते हैं) **राग सींचने से दुःख मिलेगा।** वैराग्य और ज्ञान सींचने से अमृत मिलेगा; और राग करने से—चाहे तो शुभराग हो (तो भी) राग करने से दुःख मिलेगा और दुःख की इसे खबर नहीं है कि हम दुःखी है या नहीं? वह राग को वेदता है। जो राग को वेदता है, वह दुःख को वेदता है। ये पैसेवाले या राजा या सेठिया या देव, ये सब दुःखी हैं। राग के वेदन में पड़े हैं, (वे सब दुःखी हैं)। 'यह मेरा' और 'मैं उसका' इसकी मज़ा का जो राग, इसे आता है, वह राग केवल दुःख है; आत्मा की शान्ति का वैरी है! आ...हा...हा...! ऐसी बात जँचना, सुनना कठिन पड़ता है।

इसलिए ज्ञान—वैराग्यरूपी जल का सिंचन करके... आत्मा ज्ञानानन्द सच्चिदानंद प्रभु का ज्ञान (करके) और राग से विरक्त होकर; उसके ज्ञान और वैराग्य के जल का सिंचन करके **मुक्तिसुखरूपी अमृत प्राप्त कर**। आ...हा...हा...! यह अमृत की व्याख्या की! अमृत क्या (है)? (तो कहते हैं) **मुक्तिसुखरूपी अमृत...** मोक्षरूपी—सुखरूपी अमृत को प्राप्त कर। वैराग्य से और ज्ञान से मुक्तिरूपी सुख के अमृत को प्राप्त कर। राग और द्वेष से दुर्गति के दुःख मिलेंगे, आहा...हा...! यह 16 वाँ (पूरा) हुआ।

जैसे वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है, वैसे ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आयेगा। शुभपरिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आयेगा। यदि मूल स्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसंग आयें, उस समय शान्ति-समाधान रहेगा, ज्ञाता-दृष्टारूप से रहा जा सकेगा ॥17॥

17 (वाँ बोल) जैसे वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है,.... वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथ आता है। वैसे ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आयेगा। आहा...हा...! वृक्ष का मूल पकड़ने से इसके सब पत्ते, फल-फूल उसके हाथ लगते हैं। वैसे इस आत्मा का ज्ञायकपना पकड़ने से... आहा...हा...! सब हाथ आयेगा। अमृत का सागर और अनन्त गुण से भरा समुद्र, उस ज्ञायक की दृष्टि करने से अनन्त गुण, पर्याय में प्रगट होंगे और उस पर्याय में अनन्त आनन्द भी साथ में आयेगा और प्रत्येक आनन्द में प्रभुता भी भरी (होगी)। प्रत्येक गुण की पर्याय प्रगट होने पर, उसमें साथ-साथ प्रभुता भी प्रगट होगी। आहा...हा...! राग करने से रांकाई (दीनता) प्रगट होगी। इतने छोटे सूत्र...! आहा...! बात तो कठिन है बापू! अन्तर मार्ग कोई ऐसा अलौकिक है कि अभी तो सुनने मिलना भी मुश्किल हो गया है। (ऐसा) सुने तब लगे कि ये क्या कैसी बातें है? आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि ज्ञान और वैराग्यरूपी वृक्ष का मूल पकड़ा, उसको सब हाथ आयेगा। (वैसे) ज्ञायकभाव पकड़ने से सब हाथ आयेगा। पर को नहीं, राग को नहीं, पर्याय को नहीं; ज्ञायकभावी त्रिकाली द्रव्य! त्रिकाली द्रव्य को पकड़ने से सब हाथ आयेगा। उसमें सब भरा है। आहा...हा...! भाषा तो बहुत संक्षेप में है परन्तु अन्दर में भाव गहरे भरे हैं।

अनुभवसहित वाणी आयी है। आनन्द के वेदन में से यह वाणी आयी है। बहिन अनुभवी हैं (और) यह अनुभव की वाणी है। यह धारणायुक्त और सुनी हुई वाणी नहीं है। आहा...हा...! ऐसी वाणी को समझना, सुनना यह महाभाग्य (हो) तो मिले ऐसा है। साक्षात् त्रिलोकीनाथ के पास थे। भूल होकर वहाँ से यहाँ आ गये। परन्तु वह भूल बाद में निकल गयी। बाद में यह अमृत भीतर में से हाथ लगा, तब यह वाणी निकल गयी।

(यहाँ कहते हैं कि) **शुभपरिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आयेगा।** लो! शुभभाव । बहुत-से तो ऐसा कहते हैं कि हम पाप में पड़े हैं, उसकी अपेक्षा पुण्य में तो लाओ! परन्तु पुण्य भी अनन्त बार किया और पाप भी अनन्त बार किया है (परन्तु) भवभ्रमण का नाश कहाँ है इसमें? जिसमें भवभ्रमण का नाश नहीं, तो नरक और निगोद होंगे। कदाचित् दो-चार घण्टे कुछ शुभभाव किये होंगे और कोई पुण्य हुआ होगा तो स्वर्गादि में जायेगा, वहाँ से पुनः तिर्यच में—पशु में जायेगा और वहाँ से मरकर नरक में जायेगा और चारगति (में) भटकेगा। जिसने भव का नाश किया नहीं, उसके भव-परिभ्रमण का अन्त—कहीं भी अन्त नहीं आयेगा। आहा...हा...!

यहाँ तो (कहते हैं) ज्ञायकभाव को पकड़ने से सब हाथ आयेगा। **शुभपरिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आयेगा।** शुभपरिणाम करने से... णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, ऐसे पांच नवकार मंत्र का स्मरण करने से या प्रतिमा आदि की पूजा करने से, भगवान के दर्शन करने से जो शुभभाव होते हैं, ऐसे **शुभ परिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आयेगा।**

मुमुक्षु—यह करते—करते आयेगा?

पूज्य गुरुदेवश्री—करते—करते... राग—ज़हर करते—करते, लहसुन खाते—खाते कस्तूरी की डकार आयेगी! ऐसा है? लहसुन खाते—खाते कस्तूरी की डकार आयेगी? वैसे शुभ परिणाम करते—करते आत्मा में शुद्ध का परिणाम आयेगा? वह तीन काल में नहीं आयेगा। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है भाई!

शुभ परिणाम करने से कुछ हाथ नहीं आयेगा। **यदि मूल स्वभाव को पकड़ा होगा...** आहा...हा...! चैतन्यस्वभाव, ज्ञायकभाव, नित्य अनुभव भाव, अनुभव होने योग्य ऐसा जो त्रिकाली भाव, इसको यदि पकड़ा होगा तो **चाहे जो प्रसंग आयें...** (अर्थात्) चाहे कैसे भी प्रसंग आयें—शरीर में रोग आये, प्रतिकूल अपमान हो, दुनिया अनादर करे, फिर भी यदि आत्मा को पकड़ा होगा... तो **चाहे जो प्रसंग आयें, उस समय शान्ति—समाधान रहेगा...** आहा...हा...! प्रतिकूल संयोग तो एक ज्ञेय है, वह भी व्यवहार से ज्ञेय है। निश्चय से ज्ञेय तो उसका (जो) ज्ञान स्वयं को होता है, वह ज्ञान उसका ज्ञेय है।

आत्मा का ज्ञान, पर को जानने का हुआ, वह ज्ञान अपना ज्ञेय है। उस ज्ञेय को

जाननेवाला ज्ञान, ज्ञान है। आहा...! क्या (कहते) हैं? मूल स्वभाव को पकड़ा होगा तो चाहे जो प्रसंग आयें, उस समय शान्ति—समाधान रहेगा। ज्ञाता—दृष्टारूप से रहा जा सकेगा। आहा...हा...हा...! अन्त में करना तो यही है। चाहे कैसे भी प्रसंग में जाननेवाला—ज्ञाता-दृष्टा रहे, वह इसे करना है। उसमें से धर्म का मूल विकसित होकर केवलज्ञान होनेवाला है। बाकी सब बातें हैं। शुभ परिणाम चाहे कितने भी करे, इसके फल में कदाचित् स्वर्ग या ये पैसे—धूल (आदि) मिल जाये परन्तु वे सब वहाँ से मरकर पुनः नरक और निगोद में जानेवाले हैं। आहा...हा...!

भव के मूल का जिसने छेद किया नहीं, पत्ते तोड़े किन्तु मूल नहीं काटा, पत्ते तोड़े किन्तु मूल नहीं तोड़ा तो वह पत्ते पन्द्रह दिन होंगे कि पुनः पनपने लगेंगे। पन्द्रह दिन में फिर से आयेंगे। वैसे जिसने ऊपर के—शुभभाव के पत्ते तोड़े हैं किन्तु शुद्धभाव का मूल नहीं पकड़ा... आ...हा...हा...! उसको चारगति फलेगी। शुभभाव में तो गति—चारगति मिलेगी। भले कोई अशुभ(भाव) हो तो नरक और निगोद मिले, शुभ हो तो यह मनुष्य और स्वर्ग मिले परन्तु गति—चारगति (उसको मिलेगी)। भव भय से डर चाहिए—ऐसा कहा है। इसे चारगति के भव भय का डर चाहिए। उसको इस निर्भय आत्मा के प्रति लक्ष्य हो। आहा...हा...!

उसे तो किसी भी भव का डर लगता है। अरेरे...! देह छूटकर कहाँ जाऊँगा? आत्मा तो अनादि—अनन्त है। वह कोई नष्ट हो जाये, ऐसा नहीं है। तो यहाँ से छूटकर कहाँ जायेगा? ऐसा भव का भय लगे तो उसकी दृष्टि आत्मा पर गये बिना रहे नहीं। आहा...हा...! परन्तु जिसको भव का डर और भय नहीं, उसको आत्मा क्या है? उसकी ओर जाने का झुकाव उसका है नहीं, आहा...हा...! ज्ञाता—दृष्टारूप से रहा जा सकेगा। लो! (ये 17 वाँ पूरा हुआ।)

दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर है। जिस प्रकार पतंग आकाश में उड़ती है परन्तु डोर हाथ में होती है, उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व, सो मैं हूँ—ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है ॥18 ॥

18 (वाँ बोल)। **दृष्टि द्रव्य पर रखना है।** अकेला माल है! दृष्टि द्रव्य अर्थात् त्रिकाल वस्तु जो है, त्रिकाली ज्ञायक द्रव्य वस्तु है, वह पर्याय से भी भिन्न है। उस पर दृष्टि (रखनी है) अर्थात् पर्याय (की) दृष्टि उस पर रखनी है। जिसमें पर्याय नहीं है, उसमें पर्याय और दृष्टि रखनी है। उसमें राग तो नहीं (अर्थात्) ज्ञायकभाव में राग तो नहीं है परन्तु वर्तमान पर्याय है, वह (भी) उसमें नहीं। उस पर्याय को उसमें जोड़ना—उस तरफ मोड़ना, फिर भी पर्याय में द्रव्य नहीं आता, तथापि पर्याय में द्रव्य का सामर्थ्य है, उसका ज्ञान और अनुभव आता (है); इसलिए ऐसा कहते हैं कि दृष्टि द्रव्य पर रखनी है।

विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर है। विकल्प तो होंगे—शुभ आवें, अशुभ आवें, पुण्य—पाप के परिणाम भी आवें, परन्तु दृष्टि तो अन्दर द्रव्य पर पड़ी है। ध्रुव के ध्येय पर से दृष्टि हटे नहीं। समुद्र में जहाज चलते हैं, वह ध्रुव तारे अनुसार चलते हैं। ध्रुव तारा एक ही सरीखा रहता है, उस पर से जहाज है। वैसे यह ध्रुव चैतन्य भगवान—इसकी दृष्टि रखकर, चाहे जैसे परिणाम आवे परन्तु दृष्टि ध्रुव पर रहे, तब तो उसका जहाज चलता है, वरना उसका जहाज चलता नहीं। मोक्ष का मार्ग तो चलेगा; नहीं तो नहीं चलेगा, ऐसा कहते हैं।

आहा...हा...! दृष्टि द्रव्य पर रखना। द्रव्य अर्थात् कौन ? ये पैसा नहीं, हों! द्रव्य अर्थात् वस्तु। जिसमें शरीर तो नहीं, वाणी तो नहीं, राग तो नहीं, मैं पर्याय भी नहीं—ऐसा जो त्रिकाली द्रव्य, उस पर पर्याय की दृष्टि रखना। दृष्टि है, वह पर्याय है, परन्तु उसका विषय है, वह द्रव्य है। आहा...हा...! ऐसा सूक्ष्म पड़ता है।

दृष्टि द्रव्य पर रखना है। विकल्प आयें परन्तु दृष्टि एक द्रव्य पर है। जिस प्रकार पतंग आकाश में उड़ती है... दृष्टान्त देते हैं। पतंग है, वह आकाश में उड़ती है तो भी.... (परन्तु) डोर हाथ में होती है,... डोर हाथ में होती है। पतंग भले उड़े, दूर जाये परन्तु डोर हाथ में होती है। आहा...हा...! उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। आहा...हा...! मैं तो एक जाननेवाला, देखनेवाला, ज्ञाता—दृष्टा चैतन्यरस के रस से भरा भगवान, वह मैं हूँ—ऐसी दृष्टि रखे, फिर विकल्प भले हो! पतंग भले ही उड़े परन्तु डोर हाथ में है। वैसे दृष्टि द्रव्य पर रखे, फिर विकल्प भले ही हो; उसे जाने परन्तु उसे अपना माने नहीं। आ...हा...हा...!

जिस प्रकार पतंग आकाश में उड़ती है परन्तु डोर हाथ में होती है, उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। ये तो रात्रि में बोले थे, जो थोड़ा-थोड़ा लिख लिया गया। अकेला माल भरा है। आहा...हा...! गुजराती भाषा (है) परन्तु सरल (है इसलिए) हिन्दी में समझ सके ऐसा है। हिन्दी में समझ में न आये, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु—आप हिन्दी में बोलिये तो गुजरातीवाले समझ सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री—हिन्दीवालों को समझ में आये, गुजरातीवाले ठीक तरह नहीं समझ सकेंगे।

(जिस प्रकार) पतंग आकाश में उड़ती है परन्तु डोर हाथ में होती है, उसी प्रकार 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। विकल्प आयेंगे, परन्तु चैतन्यतत्त्व, वह मैं हूँ—'चैतन्यतत्त्व है, वह मैं हूँ।' जानने—देखनेवाला तत्त्व आत्मा जो है, जिसकी सत्ता की मौजूदगी में (यह सब) जानने में आता है, वह जाननेवाला है, जो कि जानने की (ज्ञात होने योग्य) चीज़ से भिन्न है, उस पर दृष्टि रखना। जाननेवाला, जो चीज़ जानने में आयी उससे भिन्न है, उस पर दृष्टि रखना। जो जानने में आता है, उस पर दृष्टि मत रखना। आहा...हा...हा...!

वह बात तो सरल थी—व्रत करो, उपवास करो और पूजा करो, भक्ति करो व दान दो और दया करो, एकदम सरल था, लो! और ये बहुत महँगा निकला! सरल तो कुछ नहीं था, सब भटकने का (कारण) था! वह सब कर-करके चार गति के भव किये हैं। आहा...! अनन्त बार मुनिपना भी धारण किया। आता है न? पूर्व में 99 बार पूर्व में अनन्त बार मुनिपना धारण किया परन्तु क्रियाकाण्ड पर दृष्टि (थी)। जो दया, दान, व्रत, भक्ति व पूजा, उस पर दृष्टि (थी)। (तो) वह तो राग पर दृष्टि है; आत्मा पर दृष्टि नहीं।

'मुनिव्रत धार अनन्त बैर ग्रैवेयक उपजायो' मुनिव्रत धार—मुनिव्रत को धारण करके अनेक बार ग्रैवेयक उपजायो। नौवें ग्रैवेयक में गया। 'पण आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' परन्तु आत्मा के ज्ञान बिना, राग से भिन्न हुए बिना, आत्मा का आनन्द नहीं आया। क्योंकि पंच महाव्रत के परिणाम (हैं,) वे भी दुःखरूप हैं। आहा...हा...! पंच महाव्रत के परिणाम, आस्रव हैं, वह शुभभाव है, वह दुःख है; इसीलिए कहा कि 'मुनिव्रत धार अनन्त

बैर ग्रैवेयक उपजायो। पण आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' परन्तु आत्मा के ज्ञान बिना उसे (जीव को) आनन्द के अंश का स्वाद आया नहीं। पंच महाव्रत के परिणाम में आनन्द नहीं, वह तो दुःख (है) और राग है। आहा...हा...! इतना कठिन कैसे बैठे? अभी तो बाहर में निवृत्ति का कोई ठिकाना नहीं, उसे (यह कैसे जँचे)? बापू! करना पड़ेगा यह! इसके बिना तुझे सुख (नहीं होगा)।

जो-जो दिन जा रहे हैं, उतना-उतना मृत्यु के समीप जा रहा है। जिस देह की जितनी अवधि लेकर आया है, वह अवधि पकने में एक समय भी इधर-उधर नहीं हो सकता। जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस निमित्त से, जिस संयोग में देह छूटनेवाली है, सो छूटेगी, छूटेगी और छूटेगी ही! लाख इन्द्र आयें तो भी इसमें एक समय की हेरफेर हो सके, ऐसा है नहीं। तो देह की (स्थिति में) जितना समय-जितने दिन गये, उतना मृत्यु के समीप जाता है। वह मृत्यु एक बार आकर खड़ी रहेगी तो यह देह छूट जायेगी... एक ही झटके में...! सब उसका पड़ा रहेगा। रुपये, स्त्री, बच्चे... आहा...हा...!

वैरागी ने एक बार गाया नहीं था? एक बार भावनगर (से एक) वैरागी आया था। (वह ऐसा गाता था) 'ऊँचा मन्दिर ने माळीया-सोड़ ताणी ने सूतो, काढो काढो रे अने सौ कहे, जाणे के जन्म्यो ज नहोतो' 'ऊँचा मन्दिर ने माळीया' 'ऊँचा मन्दिर ने माळीया, सोड ताणी ने सूतो' (अर्थात्) मर गया वह! आहा...हा...! उसको कौन शरण है? फिर कहा कि 'आ रे काया मां हवे कांई नथी' पत्नी देख रही है कि अब इस काया में कुछ नहीं रहा। 'ऐसे टकटकी लगाकर फूट-फूटकर रोये कि हाय... हाय...!' ये तो मर गया! बापू! देह की तो जो स्थिति होनेवाली है, वही होगी! वही होगी! इसमें फेरफार होगा नहीं। क्रमबद्ध में देह की स्थिति का (छूटने का) जो समय (है), उसे आना ही आना है। उसमें-क्रमबद्ध में कोई फेरफार सम्भव हो, ऐसा नहीं। आ...हा...हा...! डॉक्टर के इन्जेक्शन-फीन्जेक्शन काम में नहीं आयेंगे वहाँ!

मुमुक्षु-क्रमबद्ध में जीना लिखा हो तो काम आयेगा न!

पूज्य गुरुदेवश्री-(तो भी) काम नहीं आते। डॉक्टर स्वयं मर जाते हैं न!

भावनगर का बड़ा डॉक्टर था। सर हेमन्तकुमार ! पाटनी का बड़ा रिश्तेदार था। पाटनी है न? नहीं था? पाटनी। वह ऐसे आपरेशन कर रहा था। उसमें कहे कि मुझे कुछ हो रहा है! मुझे कुछ दर्द हो रहा है। ऐसा कहता हुआ ज्यों कुर्सी पर बैठा कि देह छूट गयी। डॉक्टर पूरी अस्पताल का सर (था) बड़ा! कौन डॉक्टर? दवाई क्या करे? और डॉक्टर भी क्या करे? डॉक्टर की देह छूटेगी, तो उसको भी पता नहीं चलेगा कि कैसे छूट गयी यह? आहा...हा...!

यहाँ यह कहते हैं कि 'चैतन्य हूँ' यह डोर हाथ में रखना। विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व, सो मैं हूँ—ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है। 'मैं तो जानने—देखनेवाला हूँ'; विकल्प आये, वह मेरी चीज़ नहीं। राग आये, पुण्य—पाप का भाव हो, वह मेरी चीज़ नहीं। ऐसा जानने से दृढ़ता होती है। आत्मा में इसकी दृढ़ता होती है। ज्ञायक... ज्ञायक.... ज्ञायक... ज्ञायक... ज्ञायक... इसका परिणमन हो जाये। ज्ञायक... ज्ञायक... होने पर ज्ञायक का परिणमन हो जाये। परिणमन (हो जाये) अर्थात् आनन्द की दशा का परिणमन हो जाये। इसका नाम सम्यग्दर्शन (है)। और क्रमबद्ध में अवस्था का फल वह आया। आहा...हा...! इसके क्रम में वह (सम्यग्दर्शन) आया। उस समय वह दृष्टि यदि द्रव्य पर चली जाये तो उसे (जीव को) आनन्द का अनुभव हो। इसके क्रमबद्ध में वह फल आयेगा। क्योंकि क्रमबद्धवाला दृष्टि द्रव्य पर रखता है। आहा...हा...! क्रम अनुसार जो होनेवाला है, वह ही होगा, इसमें कोई फेरफार होनेवाला नहीं। उसकी दृष्टि द्रव्य पर जाती है, (अर्थात्) ज्ञायक—चैतन्य पर जाती है। अतः ज्ञायक को आनन्द में अनुभव करते हुए उसकी देह छूटती है परन्तु जिसे ज्ञायक की खबर नहीं है, वह भगवान... भगवान का स्मरण करते—करते देह छूटे तो भी वह शुभभाव है, वह कोई धर्म नहीं।

वह यहाँ पर कहते हैं। विकल्प आयें, परन्तु चैतन्यतत्त्व, सो मैं हूँ—ऐसा बारम्बार अभ्यास करने से दृढ़ता होती है। आहा...हा...! अब जरा थोड़ा कठिन आया।

ज्ञानी को अभिप्राय में राग है, वह ज़हर है, काला साँप है। अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी विभाव से पृथक् हैं—न्यारे हैं ॥19 ॥

(बोल 19 वाँ।) **ज्ञानी के...** (अर्थात्) धर्मी (अर्थात्) जिसको आत्मा का ज्ञान हुआ है उसको, आत्मा जिसको अनुभव में आया है उसको **(अभिप्राय में) राग है, वह ज़हर है,...** मोक्षपाहुड़ में, मोक्षमार्ग में, 'समयसार' 'मोक्ष अधिकार' में कहा है कि शुभराग है, वह विषकुंभ है, ज़हर का घड़ा है। वहाँ 'समयसार' के 'मोक्ष अधिकार' में दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम को ज़हर कहा है। उसे विष का घड़ा कहा है। ज़हर का घड़ा...! आहा...हा...! कैसे बैठे? विषकुंभ आता है न? मोक्ष अधिकार-'समयसार'-'मोक्ष अधिकार'! विषकुंभ है। वह यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु—वह तो मुनि को लागू पड़ता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री—यह तो अज्ञानी को लागू पड़े, ऐसी बात है। अज्ञानी, राग को ज़हर न माने और मिठास माने तो मिथ्यादृष्टि है। **ज्ञानी को अभिप्राय में राग है, अज्ञानी को अभिप्राय मेंज्ञानी को अभिप्राय में है, वह ज़हर है,...** अज्ञानी को अभिप्राय में राग है, सो अमृत है। राग ही सर्वस्व है। उसने राग के अलावा भीतर में जो चीज़ है, उसे तो देखी नहीं और देखने का प्रयत्न भी किया नहीं। आहा...हा...! यह कहा न पहले? 'मुनिव्रत धार अनंत बैर ग्रैवेयक उपजायो, पण आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' आत्मा के ज्ञान बिना आनन्द का आंशिक स्वाद भी उसे नहीं आया।

वही यहाँ कहते हैं—धर्मी को अभिप्राय में राग है, वह ज़हर है, **काला साँप है। काला नाग है!** आहा...हा...! अब यहाँ तो (अज्ञानी लोग) शुभभाव में धर्म मनाते हैं! शुभभाव आते हैं, अशुभ को टालने—अशुभ से बचने के लिये शुभ(भाव) आते हैं, ज्ञानी को भी आते हैं; भक्ति का, वन्दना का, पूजा का भाव आता है परन्तु है तो वह ज़हर! आत्मा के अमृतस्वरूप से विरुद्ध है; (इसलिए) उसे ज़हर कहा जाता है। ज़हर से विरुद्ध आत्मा का स्वरूप जो (है), उसे अमृत कहा जाता है। आहा...हा...हा...! कठिन लगे जगत को!

ज्ञानी को अभिप्राय में... अभिप्राय अर्थात् क्या? श्रद्धा में—प्रतीति में, राग है वह ज़हर है, काला नाग है। आहा...हा...हा...! **अभी ज्ञानी को आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं,...** आत्मा का ज्ञान हुआ, समकित हुआ, फिर भी आसक्ति होती है,

राग होता है। (पूर्ण) वीतराग न हो, तब तक उन्हें राग आता है परन्तु उस राग को ज़हर—समान जानते हैं। (स्वरूप में से) बाहर थोड़े आते हैं, आत्मा के स्वरूप में से निकलकर धर्मी को भी थोड़ा राग आता तो अवश्य है। जब तक पूर्ण वीतराग न हो, तब तक राग आता है, परन्तु वह राग, अभिप्राय में काला साँप लगता है। काला साँप अर्थात् काला नाग जैसे ज़हरीला (होता है वैसा लगता है)। आहा...हा...हा...!

अभी वहाँ सोनगढ़ अस्पताल में (एक प्रसंग बना)। अस्पताल है न? क्षय, क्षय की! वहाँ एक बड़ा कारकुन या कोई डॉक्टर था, लो ठीक! वह डॉक्टर ऐसे बैठा था, वहाँ नीचे से नागिन निकली होगी (तो)। बैठते हुए नागिन पर पैर आ गया। नागिन निकली और पैर आया (इसलिए नागिन ने) दंश मारा। वहीं का वहीं मर गया! अभी—अभी सोनगढ़ में हुआ है। डॉक्टर को साँप—नागिन ने काटा! तुरन्त मर गया, नागिन जीवित रही! आसपास के लोग इकट्ठे हो गये! पैर तले दब गयी थी, इसलिए थोड़ा उपचार करके छोड़ दिया (अर्थात्) मरी नहीं, और वह डॉक्टर मर गया! काटते ही! नागिन ने ऐसे पैर काटा कि देह छूट गयी। अभी सोनगढ़ में ऐसा हुआ है।

वह (जैसे) ज़हर है, वैसे राग भी ज़हर है। उस ज़हर को (राग को) यदि अपना माना तो दंश (मारे वैसे) मर गया। उसके आत्मा के स्वरूप की शान्ति मर जाती है। उसका ज्ञायकभाव सत्ता में मर जाता है (अर्थात्) उसकी श्रद्धा उसे नहीं रहती। आहा...हा...! राग को यदि कुछ अंश में भी ठीक माना तो रागरहित चीज़ को उसने अठीक माना है! (उसका) अनादर किया है। आहा...हा...! **‘द्वेष अरोचक भाव’** आत्मा के प्रति जिसको राग नहीं—प्रेम नहीं और राग के प्रति जिसको प्रेम है, उसको आत्मा के प्रति द्वेष है। समझ में आया? जिसको राग के प्रति प्रेम है, उसको आत्मा के प्रति द्वेष है, आत्मा के प्रति उसको अरुचि है। राग के प्रति जिसकी रुचि है—जिसको राग की रुचि है, उसको आत्मा के प्रति अरुचि है। अरुचि है, वह द्वेष है। आहा...हा...! श्वेताम्बर में एक ‘आनन्दघनजी’ हो गये हैं, उन्होंने ऐसे शब्द लिये हैं कि **‘द्वेष अरोचक भाव’** (यदि) तुझे ज्ञायकस्वरूप नहीं रुचे और यदि राग रुचे तो तुझे आत्मा पर द्वेष है। आहा...हा...! **‘द्वेष अरोचक भाव’** आत्मा सुख (स्वभावी) आनन्दकन्द है, वह रुचे नहीं—वही द्वेष है। वह अरोचक (भाव) है,

वही द्वेष है और द्वेष है, वह ज़हर है। आहा...हा...! कठिन बात है, भाई! लोग तो शुभभावों में धर्म मनाते हैं। (कहते हैं) शुभभाव करो—करते-करते (धर्म) होगा! लहसुन खाते—खाते कस्तूरी की डकार आयेगी!! ऐसा है।

(यहाँ कहते हैं) अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है। आहा...हा...! धर्मी जीव को अभिप्राय में राग, नाग जैसा—काले नाग जैसा दिखता है। आहा...हा...! अज्ञानी को राग से प्रेम (है), (उसके) प्रेमवाला है, उसको राग का ही प्रेम है। आत्मा के प्रति उसको द्वेष है। आहा...हा...! ऐसा सुनना भी कठिन लगे अन्दर में! यहाँ तो शुभभाव को ज़हर कहा है। अभिप्राय में काला साँप (लगता है)।

ज्ञानी, विभाव के बीच खड़े होने पर भी... धर्मी जीव (को), आत्मा का ज्ञानस्वरूप राग से भिन्न है—ऐसा अनुभव हुआ (होने) पर भी राग के संयोग में खड़े (दिखते) हो तो भी विभाव से पृथक् हैं,... आहा...हा...! विभाव के परिणाम में खड़े होते हुए भी, उससे भिन्न है। वह विभावस्वभाव मेरा नहीं। विभावस्वभाव, विकार और ज़हर है! मेरा अमृतस्वरूप उस विभाव से भिन्न है। ऐसा धर्मी को—समकिति को अनुभव में आये बिना रहता नहीं। ऐसा अनुभव में नहीं आये और राग का प्रेम रहे, उसको आत्मा के प्रति द्वेष है और (वह) मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! फिर भले ही जैन सम्प्रदाय में जन्मा हो परन्तु यदि राग से प्रेम है और स्वभाव के प्रति द्वेष है, उसे मिथ्या है (तो वह मिथ्यादृष्टि है)। आहा...हा...! ऋणानु भाव होने पर भी, विभाव से पृथक् हैं... न्यारे हैं। आहा...हा...! (19 वाँ बोल पूर्ण हुआ।)

मुझे तो कुछ नहीं चाहिए, किसी परपदार्थ की लालसा नहीं; आत्मा ही चाहिए—ऐसी जिसे तीक्ष्ण तमन्ना लगे, उसे मार्ग मिलता ही है। अन्दर में चैतन्य ऋद्धि है, उस चैतन्य ऋद्धि सम्बन्धी विकल्प में भी वह रुकता नहीं — ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे मेरा अस्तित्व ही चाहिए — ऐसी अन्दर जाने की तीक्ष्ण तमन्ना लगे, तो आत्मा प्रगट हो और प्राप्त हो ॥20 ॥

20 वाँ (बोल) मुझे तो कुछ नहीं चाहिए, किसी परपदार्थ की लालसा नहीं; आत्मा ही चाहिए—ऐसी जिसे तीक्ष्ण तमन्ना लगे.... आहा...हा... ! मेरा आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है—इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिए। शुभराग आवे, वह भी ज़हर है, ऐसे यदि आत्मा में तन्मयता लगे। आहा...हा... ! उसे मार्ग मिलता ही है... उसे आत्मा प्राप्त हुए बिना रहता नहीं। आहा...हा... ! जिसने आत्मा की पकड़ की है और राग की पकड़ छूट गयी है, उसे आत्मा की प्राप्ति हुए बिना रहती नहीं। अन्दर में चैतन्य ऋद्धि है, उस चैतन्य ऋद्धि सम्बन्धी विकल्प में भी वह रुकता नहीं... आहा...हा... ! क्या कहते हैं? चैतन्य में तो अनन्त ऋद्धि भरी है; अनन्त सम्पदा-अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति, अनन्त स्वच्छता, अनन्त कर्ता-कर्म-करण सम्प्रदान की शक्तियों का अनन्त का सागर है; परन्तु ऐसे गुण के प्रति... आत्मा ही चाहिए—ऐसी जिसे तीक्ष्ण तन्मयता लगे, वह परपदार्थ का रंग, आत्मा ही चाहिए ऐसी जिसे तीक्ष्ण (तमन्ना) लगे, उसे मार्ग मिलता ही है। अन्दर में चैतन्य सम्बन्ध ऋद्धि के विकल्प में भी वह रुकता नहीं है। ओहो...हो... ! मैं ऐसा ! मैं आनन्दस्वरूप ! मैं ज्ञानस्वरूप ! ऐसा जो विकल्प आवे, उसमें भी ज्ञानी रुकता नहीं। आहा...हा... ! जानने-देखनेवाला रहता है। ऐसी बात है प्रभु ! मार्ग तो ऐसा है ! है ?

उस ऋद्धि सम्बन्धी विकल्प में भी वह रुकता नहीं — ऐसा निस्पृह हो जाता है कि मुझे मेरा अस्तित्व ही चाहिए.... आहा...हा... ! धर्मी जीव को—समकृति को तो ऐसा लगता है (कि) मेरे तो मेरा अस्तित्व जो कि त्रिकाल शुद्ध है, वही चाहिए; इसके अतिरिक्त कोई चीज़ मुझे नहीं चाहिए। आहा...हा... ! (मुझे) मेरा अस्तित्व ही चाहिए... अस्तित्व 'ही' ! दूसरे का अस्तित्व जरा भी नहीं; मेरा अस्तित्व ही मुझे चाहिए। मेरा ज्ञायक अस्तित्व जो चिदानन्द है, वही मुझे चाहिए। ऐसी अन्दर जाने की तीक्ष्ण तमन्ना लगे ऐसी अन्दर जाने की अर्थात् आत्मा में जाने की तीक्ष्ण तमन्ना लगे तो आत्मा प्रगट हो और प्राप्त हो।

विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)